International Journal of Sanskrit Research 2018; 4(1): 162-166

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2018; 4(1): 162-166
© 2018 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 13-11-2017
Accepted: 21-12-2017

डॉ. आराधना सारवान
व्याख्याता (हिन्दी), राजकीय शास्त्री संस्कृत महाविद्यालय, अलवर, राजस्थान, भारत

Corresponding Author:
डॉ. आराधना सारवान
व्याख्याता (हिन्दी), राजकीय शास्त्री संस्कृत महाविद्यालय, अलवर, राजस्थान, भारत

समकालीन हिन्दी कहानी साहित्य में स्त्री-विमर्श

डॉ. आराधना सारवान

प्रस्तावना

समकालीन साहित्य में कहानी विधा अपनी उपलब्धियों में किसी भी अन्य विद्या से कम उपयोगी नहीं है जीवन के अतरंगी गहन, जटिल अनुभवों की पहचान कहानी के माध्यम से और सहज हुई है । कहानी का मानव सभ्यता और उसके विकास के साथ गहरा सम्बन्ध है । सभ्यता के आदिकाल में भी कहानी सुनने - सुनाने की परम्परा थी जीवन की वास्तविकताओं के मार्मिक खण्डों का उद्‌घाटन ही आज की कहानी का ध्येय है । इसलिए इसे जीवन का एक महत्वपूर्ण टुकड़ा कहा जाता है ।

कहानियाँ जीवन का टुकड़ा होती है जिसमें परिवर्तन जीवन में हुए परिवर्तनों को दर्शाते है, पर इधर स्वातन्त्र्योत्तर काल से कहानियों में बहुत परिवर्तन आये भारतीय स्वातन्त्र्योत्तर काल की दृष्टि से नया था ।

पाश्चात्य जातियों के सम्पर्क से आने के परिणामस्वरूप हमारी जीवन पद्धति में निरन्तर परिवर्तन हुए और स्वतंत्र होते-होते हमारी सभ्यता और संस्कृति पाश्चात्य जीवन से काफी प्रभावित हुई है । जिसका पूरा-पूरा प्रभाव कहानियों पर पड़ा, कहानीकारों पर पड़ा । आज का कहानीकार कहानी का स्वयं सहभागी और सहयोगी बनकर उपस्थित होने लगा है । उसके सामने प्रश्न उपलब्धियों का नहीं, चुनौतियों का था । कल्पना का नहीं, यथार्थ का था । समाज को विसंगतियों, विद्रुपताओं से बचाने का था । जिसका वह स्वयं हिस्सेदार है और काफी हद तक कहानीकारों ने पूरी ईमानदारी के साथ अपने इस कर्तव्य का निर्वाह किया भी हैं और कर भी रहे हैं । सतत् गति से यह क्रम जारी है ।

समकालीन समाज की सबसे विकट समस्या बिगड़ने स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की उनकी भूमिकाओं की है; अस्तित्व की है, क्योंकि हमारी जर्जर व्यवस्था ने उनमें इतना असंतुलन पैदा कर दिया है कि आज स्त्रियों की अपनी पहचान ही धूमिल होती रही है । ऐसे में उनका एकजुट हो एक ही स्वर में आवाज उठाना स्वाभाविक ही था । जिसकी साफ झलक भारतीय ही नहीं पश्चात्य साहित्य पर भी इनती गहरी पड़ी है कि समकालीन साहित्य की छोटी से छोटी कृति भी अछूती नहीं रही है ।

उसमें कहीं न कहीं चाहे मन्दगति से या फिर तीव्र गति से यह स्वर सुनाई पड़ ही जाता है । जिसे हिन्दी कहानीकारों ने अपने-अपने स्तर से दिखाने का ही नहीं है, स्पष्ट करने का भी प्रयास किया है । इस विवेच्य समस्या को स्त्री-पुरूष दोनों ही प्रकार के कहानीकारों से उठाकर हिन्दी कथा साहित्य को समृद्ध किया है स्त्री समस्याओं पर मानवीय जीवन से लेकर सामाजिक राजनैतिक तथा अन्य सभी संदर्भों में विचार-विमर्श किया है ।

समाज चाहे कहीं का भी हो, अच्छे और बुरे दोनों ही प्रकार के तत्वों से ही बनता है । जिससे समाज में रहने वाले प्राणी प्रभावित होते ही हैं । परन्तु चिन्ता का विषय यह नहीं क्योंकि कहीं भी पूर्ण विचारेक्य सम्भव नहीं । जब समाज की सबसे छोटी ईकाइ परिवार में ही पूर्ण रूप से तालमेल सम्भव नहीं फिर भी परिवार संस्था आज भी अपनी विशिष्टता के कारण विद्यमान है तो फिर समाज में संघर्ष पूर्णतः कैसे समाप्त हो सकता है । यहाँ चिन्ता का विषय स्त्रियाँ बनाम समाज है । क्या वजह है कि समाज का महत्वपूर्ण हिस्सा होते हुए भी उनसे सम्बन्धित नई-नई समस्याएँ आये दिन उत्पन्न होती ही रहती है । जिनका प्रतिशत पूर्वी देशों में पश्चिमी देशों की तुलना में ज्यादा है । उन्हें हर कदम-कदम पर छोटी से छोटी बात के लिए संघर्ष करना पड़ता हैं । इन्ही समस्याओं ने ही हमारी सामाजिक व्यवस्था को जड़ों तक हिला दिया है । चाहे वह दहेज के रूप में हो, बलात्कार के रूप में हो, तलाक के रूप में हो या फिर अन्य किसी रूप मे हो इन सभी समस्याओं के कारण जो आज इतनी विकृति आ गयी है, स्त्रियों का जीवन व्यर्थ के कष्टों में पड़ गया है, जिन्हें कहानीकारों ने अलग-अलग परिप्रेक्ष्य से अपनी कहानियों में अभिव्यक्ति दी है ।

हमारे समाज की सबसे बड़ी त्रासदी यह है कि, चाहे कुछ भी घटे और यदि उसमें कहीं लेश मात्र भी स्त्री जुड़ी हो तो बड़े आराम से बिना कुछ विचारे ही स्त्री को ही दोषी बना दिया जाता है चाहे वह अपराधी हो या न हो । या फिर दोषी हो और साथ में पुरुष भी हो तो ज्यादा जिम्मेदार उसी को ठहराया जाता है । नसीमा ऐसे ही गलत आरोपों का शिकार होती है । उसके निकाह को पांच साल हो गये हैं पर वह 'संतानहीन' है जिसके लिए वह दोषी ठहरायी जाती है । जबकि वह दोषी नहीं है । वह दिन रात खटती है, पति कम खटता है और दारू भी पीता है । वह सबकी सुनती है 'मरद, सास, जेठानी सब औलाद खातिर उसी पर अछरंग लगाते हैं । पांच साल निकाह को हो गये, बाकी औलाद का मुँह नहीं देखे... बाँझ है... ससुरी... दूसरा निकाह पढ़वा लो...[1]" । नसीमा इतनी हताश हो जाती है कि पुकार उठती है "या खुदा एगो औलाद दे दो... घरवाले हमको जीने नहीं देंगे" । पति उसे बार-बार ताने मारता है कि वह एक चुहिया तक न जन सकी, एक दिन वह घर छोड़कर चला जाता है और कलकत्ते में दूसरी स्त्री रख लेता है । इधर नसीमा नरेश से सम्बन्ध बना लेती है, वह अन्दर से टूटी हुई है, हताश है, बाँझ शब्द सुन-सुनकर दु:खी है । ऐसे में जब वह गर्भवती हो जाती है तो नरेश के कहने पर भी लोक-लाज छोड़कर बच्चे को जन्म देती है । उसका दोष न होते हुए भी वह दोषी बनायी जाती थी । इससे तरह-तरह के मानसिक तनाव झेलने पड़ते हैं जो कभी किसी रूप में सामने आता है तो कभी किसी रूप में ।

"एक अश्लील कहानी" की नायिका कुन्ती जो लगभग तीस वर्ष की है । रंग गोरा ही नहीं, बल्कि गोरेपन की आभा झलकती है वह अति सुन्दर है । पति जुआरी है, सुबह से शाम तक जुआ खेलता है, कभी ठीक से बात नहीं करता है, उनके सम्बन्धों में तनाव उस सीमा तक पहुँच जाता है कि झगड़ा होने पर पति उसे बुरी तरह पीट देता है । यह सब होते-होते वह प्रतिकार करने लगती है । 'मानसिक-शारीरिक कष्ट' से मजबूर होकर वह कहती है - मैं नही रहूँगी अभी तेरी पोल खोलूँगी तेरी एक-एक बात दुनियाँ को बताउँगी । पति उसके प्रतिकार को सह नहीं पाता है और उससे कहता है - "मैं तुझे नंगी करके निकालूंगा ।... तू मुझे जलील करना चाहती है । तुझे जलीलों की तरह गली में न निकाला तो अपने बाप का नहीं । उतार साड़ी । ये तेरे बाप ने दी है । उतार साड़ी निकल[2]" । और कुन्ती साड़ी उतार देती है । सम्पूर्ण नग्नता के साथ गली में बैठ जाती है । यह वास्तव में उसकी अश्लीलता नहीं, यह उसका प्रतिकार था, उसकी मानसिक पीड़ा थी जिसके लिए वह बार-बार विवश की गई । जहाँ एक ओर समानता की बात करते हैं

वहीं दूसरी ओर शर्म, लज्जा को स्त्री से ही जोड़ते हैं । उसे एक व्यक्ति न समझ वस्तु समझते है ।
स्त्री चाहे किसी भी रूप में क्यों न हो, वह कही भी सुरक्षित नहीं उसे संघर्ष करना ही पड़ता है । 'सामाजिक-पारिवारिक कुठाराघात' सहने ही पड़ते हैं । 'कुसुम' एक अविवाहित भावुक लड़की है । जो बचपन से ही रघु के लिए माँ बहन बन गई, विवाह योग्य होने पर पिता की बेबसी और रघु के भविष्य के लिए विवाह न करने का फैसला करती है । परन्तु जिस रघु के भविष्य के लिए वह अपना भविष्य दाँव पर लगा देती है । उसी रघु की पत्नी रमा उसके साथ दुर्व्यवहार करती है । नाते-रिश्तेदार ताने मारते है - "यह रमा की ननद है, अनव्याही है । इन्हीं के साथ रहती है, बड़ी रूआब वाली है । इसी ने लड़के को पढ़ाया-लिखाया है । घर में इसी का राज है । इसी का हुकुम चलता है" । और फिर इन आवाजों से अलग एक तीखा स्वर उभरा था । यह रमा की बड़ी ननद थी, "अरे सास होती तो चार-पाँच साल में मर जाती । यह तो ननद है, हट्टी-कट्टी है जिन्दगी भर छाती पर मूँग दलेगी रमा से कहो, इसे जल्दी से शादी करके चलता करें[3]" । कुसुम सबसे तानें सुनती है पर सबसे कष्टप्रद स्थिति तब होती है जब रमा उस पर तानों का कुठाराघात करती हैं । उसके सारे किये धरे पर पानी फेर देती है । जब रघु रमा की बजाय कुसुम को स्कूटर से ले जाने की बात करता है । इससे रमा क्रोधित हो जाती है । कुसुम उसे समझाने का प्रयास करती है । तो रमा कहती है - "तो आप क्यों परेशान हो रही है ? सामने से गुजरते ऑटो रिक्शा को रूकने का संकेत करते हुए रमा ने कहा - "जिन्हें फिक्र होनी चाहिए, वे तो कान में रूई दिये बैठे हैं, उन्हें तो बस आपकी फिक्र है । बस आपको असुविधा न हो, फिर बीवी चाहे भाड़ में जाए । हुंह, ननद न हुई मेरी सौत हो गई[4]" । कुसुम का सारा त्याग एक ही झटके में रमा ने व्यर्थ कर दिया । 'अनव्याही लड़की' परिवार समाज के लिए समस्या मानी जाती है चाहे वह कितनी ही शिष्ट क्यों न हों ।
आज भी हमारे समाज में 'सामंती मानसिकता' व्याप्त है । लोग जाति द्वारा जाने जाते हैं । योग्यतानुसार नहीं । यद्यपि परिवर्तन आया है फिर भी अभी इसमें बहुत कमियाँ है । यही ऊँची-नीच के भेदभाव हमें कई कदम पीछे ढकेल देते हैं । हमारी प्रगति में बाधक है । इसी सामन्ती मानसिकता की भुक्तभोगी रही है सारी उम्र प्रभा जी । जिनका जन्म वैश्य कुल में हुआ । प्रभा जी ने रवि के पिता से अर्न्तजातीय विवाह किया जिसका विरोध प्रभा जी की सास ने जमकर किया । वे हमेशा ऊँची आवाज में कोसती 'जिस बनिया - बकाल के छुए पानी से हम पाँव भी नहीं धोते, वह घर में बहू बनकर रहे । इस औरत ने चेतन का मतिहरण कर लिया है ।... तू मर्द है, बीस शादियां कर सकता है । तुम्हारे दादा ने तीन शादियाँ की । तू उस कलमुंही को घर से निकाल, नहीं तो में डूब मरूंगी[5]" ।

प्रभा और चेतन के (रवि के पिता) रिश्ते से वह खुश न थी और अन्त में अपनी बात मनवा ही लेती है । यहाँ प्रश्न यह उठता है कि क्या प्रभा का दोष चेतन से निम्न कुल में जन्म लेना था ? जबकि वह हर तरह से अच्छी थी । जन्म लेना उसके हाथ में न था पर स्वयं को काबिल बनाना था, जो उसने बनाया । आज ऐसी मानसिकता वाले हजारों हैं ।
चाहे सवाल 'ऊँच-नींच' का हो या फिर 'अमीरी-गरीबी' का हो हर बार स्त्री का ही पक्ष कमजोर है । कहीं न कहीं से वो ही मात खाती है । पुरुष के बचाव के रास्ते निकल आते हैं । क्योंकि वह सबल माना जाता रहा है । स्त्री दुर्बल मानी जाती है । इसलिए उसके लिए रास्ते बन्द से हो जाते हैं । 'मंजिल कहाँ है तेरी' की उषा को भी कोरी सहानुभूति मिलती है ओर को भी तब जब वह जीवन से हाथ धो बैठती है । इस कहानी में आलिया जो पाकिस्तान की है । अमेरिका में रहकर डॉक्टरी पढ़ रही है । वहीं हिन्दुस्तानी मदन से उसका प्रेम हो जाता है । जब वह छुट्टियों में घर आती है तो ऊषा का उसके भाई सलीम से धीरे-धीरे स्नेह बढ़ता जाता है और एक दिन वही स्नेह उसके कलंक का कारण बनता है जिससे आलिया की माँ, फुफी व अन्य सदस्य दुःखी तो होते हैं पर उसका समाधान नहीं खोजते हैं । उषा कुँए में कूदकर आत्महत्या कर लेती है पर जब घर के लोगों को आलिया और मदन के रिश्तों की बात पता चलती है तो कहते हैं कि वह सुन्दर और ऊँचे खानदान से हैं यदि मुसलमान हो जाय तो उन्हें एतराज न होगा । आलिया संभलकर बैठ गई, 'यानि मदन मुसलमान हो जाए तो आप लोगों को कोई

एतराज नहीं होगा'?... 'एतराज हम तो गर्व से कहेंगे कि हमारी आलिया बीवी ने एक काफिर को मुसलमान किया है' । 'तो आप लोगों को उषा को मुसलमान बनाने का ख्याल क्यों नहीं आया? क्यों कुँए में कूदकर गर जाने दिया, आप लोगों ने उसे ? इसलिए कि वह नीच जाति की थी, गरीब थी[6]" । स्त्रियों की योग्यता पर हमेशा प्रश्नचिन्ह लगाया जा रहा है शायद यही वह वजह है कि पुरुष उसके साथ मनचाहा खेल खेल जाते हैं, 'उसे छलते' हैं । शिवप्रसाद सिंह की कहानी 'नन्दो' की नायिका नन्हीं छली जाती है । उसका विवाह मिसरीलाल के साथ (जो काला बदसूरत है) हो जाता है विवाह से पूर्व रामसुभग को जो कि मिसरीलाल का ममेरा भाई है, दिखाया जाता है । नन्हों जिसकी पत्नी बनने के सपने देख रही थी उसकी भाभी बना दी जाती है । वह भी उसे अपना भाग्य समझकर अपना तो लेती है परन्तु वह जिससे प्रेम करती है, उसकी पत्नी नही बन पाती है और जिसकी पत्नी बनती है, उससे प्रेम नहीं कर पाती है । इस पर भी मर्यादावश वह सब कुछ सह जाती है । यहाँ तक कि मन में रामसुभग की चाहत होने पर भी उसके बाँह पकड़ने पर उसे फटकारती है - 'शर्म नहीं आती तुम्हें - बड़े मर्द थे, तो सबके सामने बाँह पकड़ी होती, तब तो स्वांग किया था, दूसरे के एवज बने थे, सूरत दिखाकर उगहरी की थी, अब दूसरे की बहू का हाथ पकड़ते सरम नहीं आती[7]" । जिस प्रकार वह छली जाती है उस प्रकार पुरुष नहीं छले जाते और यदि किसी रूप में छल होता भी है तो प्रतिकार कर उठते हैं पर स्त्री को 'भाग्य का लेखा है सब' कहकर सहने को विवश किया जाता है । क्योंकि वह जानती है कि वह विरोध करें भी तो उसका साथ कौन देगा, स्वयं जन्म देने वाले भी न दे सकेंगे तो दूसरों से यह क्या उम्मीद करेगी ।

'अछूत समस्या' एक लम्बे अरसे से चली आ रही है । जिस पर स्वयं गांधी जी ने चिन्ता ही नहीं व्यक्त की अपितु इसे समाप्त करने के लिए स्वयं कारगर कदम उठाये थे । आज सरकार भी इस पर ध्यान दे रही है । पर अब भी ये समस्या समाप्त नहीं हुई हैं, परन्तु आश्चर्य की बात तो तब लगती है जब अभिजात्य वर्ग के कुछ शौकीन लोग यहाँ भी खिलवाड़ के बाज नहीं आते है 'रतिया' किस प्रकार ठाकुर रीझपाल सिंह के हाथों खिलवाड़ बनती है इसी कहानी की ये कुछ अंश स्पष्ट करते हैं - "मतऊ डोम की पतोहू रतिया डोम कौन है ससुरी?.... तुम्हारी सुअर सी औलादों को स्कूल में संग बैठने-पढ़ने की सरकारी इजाजत क्या मिल गई है कि तु मतऊ, दतऊ, धनकुआ ईसुरी नाम छोड़ वॉभन, ठाकुरों के नाम रखनें लगी ? तेरा बेटवा देवेन्द्र प्रताप सिंह हो गया है तो तू हो गयी उसकी महतारी ठकुराइन, क्या, हो गयी न[8]" । चूंकि रतिया डोम है इसलिए उसे अपनी खुद की जनी संतान का नाम भी इच्छानुसार रखने का अधिकार नहीं, डोम होने से वही नाम रख सकती है । जो उपेक्षा से बोले जा सके, जिनमें बोध हो की वह उपेक्षित वर्ग से है । रतिया एक अछूत वर्गीय स्त्री के और उसका स्त्री होना अभिजात्य वर्गीय रिछपाल सिंह के लिए शौक का माध्यम बनता है । शौक के सम्मुख अछूत वर्ग का होना समस्या नहीं । जिससे रतिया कह उठती है - "मार डोरो... खिला दो, डर कर हम सांच के पर नहीं करत सकते मालिक । ठाकुर के बेटे का नाम ठाकुरों जैसान धरें तो क्या डोम चमारों वाला धर दें[9]" । रतिया स्त्री रूप में तो ठाकुर को स्वीकार है पर छिपे रूप में उसकी सन्तान का नाम उसे स्वीकार नहीं क्योंकि वह अछूत है । ये सामन्ती मानसिकता की जबरदस्ती नहीं तो और क्या है । आज हमारे देश में न जाने कितनी ही रतियाएं हैं जो शोषण का शिकार हैं पर उनकी आवाज भय से दबी हुई है ।

'घरवास' की कलिया सिर्फ इस बात पर झिड़की खाती है क्योंकि वह मजाक में अपना नाम रामकली बताती है - "कलमुही ! अपनी औकात भूल गई । ई मुंह मसूर की दाल । मुसहरनी रामकली कब से होने लगी ? आज भर सुन लिया । आगे कभी बोली तो राख लगा जीभ खींच लूंगी । राम-सीता का नाम भी अपवित्र कर दिया घरवास[10]"। अपने बच्चे का नाम पप्पी रखने पर भी वह डाँट खाती है । इतना ही नही घरवास की एक लम्बे अरसे से चाहत रखने वाली कलिया की सरकारी मकान मिलने की आस तो पूरी होती है पर न तो पण्डित जी आते हैं और न ठकुराईन के समान उसके घरवास का विधि-विधान ही पूरा होता है ।

प्रायः 'स्त्री-पुरुष' भेद की समस्या जन्म से ही शुरू हो जाती है । स्वयं जन्मदाता ही भेद करते हैं तो

दूसरे लोगों की बात ही क्या । कन्या रूप में स्त्री परायी अमानत के रूप में पाली जाती है तो विवाहोपरान्त पराई बेटी के रूप में स्वीकार की जाती है । उसका अपना तो जैसे कुछ होता ही नहीं है । 'लाली' का विवाह सुकेश से हुआ जिससे विवाह के बाद डॉक्टरों ने बीमारी के दौरान हुई जांच से असाध्य रोग से ग्रसित घोषित कर दिया । इस पर भी उसकी सास, पति उससे वंश बढ़ाने की उम्मीद रखते हैं । उससे हर पल कर्तव्य निर्वाह की उम्मीद की जाती है । "मैं सिर्फ यही जानती है कि सुकेश की बिमारी के लिए मैं कही से दोषी नहीं थी, किन्तु उसके सारे दुष्परिणाम, भय, घृणा... यहाँ तक कि संक्रमण भी, मुझे झेलने पड़े है । सुकेश पुरुष थे । मेरे स्वामी । मुझ पर उनका सहज अधिकार था यह बात न तो कभी सुकेश भूले न ही दूसरे लोग । मैं सुकेश की पत्नी थी, उनके जन्म-जन्मातर की 'चरण दासी' उनके प्रति मेरे अशेष कर्तव्य हैं । यह बात भी कोई नहीं भूलता[11]"।

सुकेश की बीमारी पर उसके माता-पिता आखिरी दम तक राजधानी तक से जाकर इलाज करवाते हैं पर जब लाली पुत्र जन्म के बाद बीमार पड़ जाती है तो उसके प्रति सास-ससुर उदासीन हो जाते हैं । लाली के बार-बार इलाज के लिए कहने पर भी वे लोग ध्यान नहीं देते हैं । लाली को पराई बेटी की नियत से ही सास ने देखा यदि ऐसा न होता तो वह कभी जानकर कि उसके सुकेश को 'एड्स' है । बहू का जीवन वंश के लिए न तो दांव पर लगाती है और न ही उसके इलाज में अनाकानी करती । आज लाली ही नहीं उस जैसी हजारों हजार लालियाँ हैं जो उदासीनता का शिकार होती है । यहाँ तक कि कभी-कभी से छोटे से छोटा रोग लगने पर भी लापरवाही के कारण असाध्य रोग का रूप धर लेता है और अन्ततोगत्वा वह मृत्यु को प्राप्त होती हैं । कभी रोगों से ग्रसित होकर लालियाँ मरती हैं तो कभी मार दी जाती हैं या इतनी विवश कर दी जाती हैं कि उनके समक्ष आत्महत्या, वेश्यावृत्ति जैसे गलत रास्ते ही सामने रह जाते हैं ।

आज हमारे देश में स्त्री सम्बन्धी प्रतिदिन कई नई नई समस्याएँ उठती है जिन पर चिन्ताएँ की जाती हैं। इन सबके लिए जहाँ एक ओर पुरुष की मानसिकता जिम्मेदार है वहीं दूसरी ओर स्वयं स्त्रियों का स्त्रियों के प्रति असहयोग भी कम जिम्मेदार नही। आज आवश्यकता नित नई संगोष्ठी कर स्त्री सम्बन्ध चिन्ता अभिव्यक्ति करने की नहीं बल्कि एकजुट होकर मानसिकता परिवर्तन की है । समानता से ज्यादा सम्मान की है तभी हम समाज में व्याप्त स्त्री सम्बन्धी चिन्ताओं को समाप्त कर प्रगति की ओर अग्रसर हो पायेंगे । एक नई स्वस्थ सुन्दर सामाजिक व्यवस्था सुन्दर संस्कृति का निर्माण कर सकेंगे ।

सन्दर्भ

1. डॉ. कनकलता, 'नसीमा बनाम मसाजवाली', जन.-अप्रै. 2003, पृ. – 63
2. कमलेश्वर, 'एक अश्लील कहानी' से
3. मालती जोशी, 'हमको दियो परदेस', बोल री कठपुतली संग्रह से, पृ. – 49
4. मालती जोशी, 'हमको दियो परदेस', बोल री कठपुतली संग्रह से, पृ. – 50
5. युगल 'कोयला भई न राख' आजकल/मार्च 2002 पत्रिका से, पृ. - 14
6. जाहिदा हिना, 'मंजिल है कहाँ' कहानीकार जन.-अप्रै.2003, पृ. - 129
7. शिवप्रसाद सिंह 'नन्हीं', एक दुनियाँ समानान्तर – सं. डॉ. राजेन्द्र यादव, पृ. 352
8. चित्रा मुद्गल, 'नाम', लपटें कहानी संग्रह से, पृ. – 106
9. वही, पृ. – 106
10. मृदुला सिन्हा, 'घरवास', स्पर्श की तासीर-कहानी संग्रह से
11. नीलिमा सिन्हा, 'जीना चाहती हूँ इसलिए', आजकल/सितम्बर 1999 से पृ. – 11